जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

ISSN 2454-4450

हंस

मूल्य ₹ 75

सितंबर 2026

आदिवासी विशेषांक (भाग-2)

संपादक
संजय सहाय
•
प्रबंध निदेशक
रचना यादव
•
व्यवस्थापक/सह-संपादन सहयोग
वीना उनियाल
•
सहायक संपादक
शोभा अक्षर
संपादन सहयोग
माने मकर्तच्यान
•
प्रसार एवं लेखा प्रबंधक
हारिस महमूद
•
शब्द-संयोजन एवं रूपांकन
प्रेमचंद गौतम
•
सोशल मीडिया प्रबंधक
नाज़रीन
•
ग्राफिक्स
साद अहमद
•
कार्यालय सहायक
किशन कुमार, दुर्गा प्रसाद
•
मुख्य प्रतिनिधि (उ.प्र.)
राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
•
रेखाचित्र
शैलेंद्र सरस्वती, मार्टिन जॉन, सिद्धेश्वर, सुरेश बरनवाल

कार्यालय
अक्षर प्रकाशन प्रा. लि.
4229/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-2
व्हाट्सऐप : 9717239112, 9560685114
दूरभाष : 011-41050047
ईमेल : editorhans@gmail.com
वेबसाइट : www.hanshindimagazine.in

मूल्य : 75 रुपए प्रति
वार्षिक रजिस्टर्ड : 1250 रुपए (व्यक्तिगत)
संस्था/पुस्तकालय : 1500 रुपए (संस्थागत)
वार्षिक पीडीएफ : 600 रुपए (व्यक्तिगत)
पीडीएफ : 700 रुपए (संस्थागत)
विदेशों में : 80 डॉलर
सारे भुगतान मनीऑर्डर/चैक/बैंक ड्राफ्ट द्वारा अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. (Akshar Prakashan Pvt. Ltd.) के नाम से किए जाएं.

हंस/अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे. अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है. हंस में प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं. उनसे हंस की सहमति अनिवार्य नहीं है. साथ ही उनके मौलिक या अप्रकाशित होने का उत्तरदायित्व संपादक और प्रकाशक का नहीं है बल्कि यह दायित्व रचनाकार का है.

प्रकाशक/मुद्रक : **रचना यादव खन्ना** द्वारा अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 4229/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित एवं चार दिशाएं, जी-39/40, सेक्टर-3, नोएडा- 201301 (उ.प्र.) से मुद्रित. संपादक–संजय सहाय.

सितंबर, 2026

मूल संस्थापक : **प्रेमचंद : 1930**
पुनर्संस्थापक : **राजेन्द्र यादव : 1986**

पूर्णांक-479 वर्ष : 41 अंक : 2 सितंबर 2026

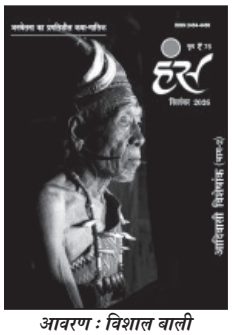

आवरण : विशाल वाली

जनचेतना का प्रगतिशील कथा-मासिक

अतिथि संपादक : अनुज लुगुन

इस अंक में

अतिथि संपादकीय
4. हमें आदिवासियत की जरूरत है: अनुज लुगुन

अपना मोर्चा
6. पत्र

न हन्यते
10. इतिहास के पक्ष में सुमित : सिद्धेश्वर पी. शुक्ला

वैचारिकी
14. बंजारा: अभिव्यक्ति और जीवन दर्शन: वीरा राठोड
20. ओडिशा के प्रमुख आदिवासी साहित्यकार : रुद्र चरण माझी
23. कर्नाटक के आदिवासियों के महाकाव्य : एस.एम मुत्तय्य
27. उपनिवेशवादी निर्मितियों के विरुद्ध : कुमारी उर्वशी
30. साहित्यालोचना के प्रस्थान बिंदु : पुनीता जैन
35. सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में आदिवासी नाटक : लहरी राम मीणा

विमर्श
39. समाधान का आंबेडकरी रास्ता: सुनील कुमार 'सुमन'
44. पीवीटीजी: संसदीय प्रतिनिधित्व की पहल: सुधीर पाल
49. आदिवासी प्रश्न और अकादमिक विमर्श की सीमाएं : नीतिशा खलखो/अभय कुमार

संस्मरण
56. आदिवासी साहित्य की ओर: महादेव टोप्पो

कहानियां
60. जंगली भाषा: शोभा लिम्बू
64. रंग-संग: विश्वासी एक्का
68. लौह कवच: कमलेश
74. रोनाल्डो मुंडानिकोव : पंकज मित्र
80. चंदन: सुनील गायकवाड

कविता
86. कानजी भाई पटेल
87. महुआ माजी
88. गणेश गनी
90. प्रियंका उरांव, दिव्या मुर्मू, कल्पना गवली
91. सावित्री बड़ाईक
92. रमेश कार्तिक
93. छोटनी असुर

जन आंदोलन
94. केन बेतवा प्रोजेक्ट के विरुद्ध: न्याय दो या मार दो! : भंवर सिंह मीना/सर्वेश त्रिपाठी

रेतघड़ी
97

हमें आदिवासियत की जरूरत है

अनुज लुगुन

बीसवीं सदी का शुरूआती दशक, एक तरफ राष्ट्रवादी आंदोलन तेज हो रहा था, दूसरी तरफ पूंजीवाद शासकीय नीतियों का हिस्सा होकर ताकतवर बनता जा रहा. इन्हीं के बीच से होकर आदिवासियों का भविष्य भी तय होने वाला था. 1910 के दशक तक देश में दो तरीके के लौह-इस्पात के उत्पादन के तंत्र थे. पहला, हजारों सालों से चली आ रही आदिवासियों के लोहे की ज्ञान परंपरा और उनके लौह उत्पादन के भट्ठे, जो अगरिया और असुर आदिवासी समुदायों के स्वदेशी शिल्प थे. दूसरा, नए मशीन जो पूंजीपतियों द्वारा लागाए जा रहे थे. 1907 ई. में स्थापित टाटा स्टील प्लांट दूसरा तरीका था, जो स्वदेशी नहीं था लेकिन राष्ट्रवादी कहलाता था. वेरियर एल्विन लिखते हैं कि चालीस के दशक तक आते-आते मात्र साढ़े तीन सौ के आसपास ही आदिवासियों के लोहे के भट्ठे बचे रह गए थे जिन्हें नई आई फैक्ट्रियों ने निगलना शुरू कर दिया था.

यह आकस्मिक नहीं हो रहा था बल्कि कानूनन संभव हो रहा था. इस्पात के उत्पादन के लिए जो नीति बनी उसमें परंपरागत या स्वदेशी आदिवासी-शिल्पकारों की कोई चिंता नहीं की गई, ना ही उन्हें इस्पात की नई नीतियों से जोड़ा गया. यहां तक कि 'स्वदेशी' का नारा लगाने वाले कथित राष्ट्रवादियों ने भी आदिवासियों के हजारों साल पुराने समृद्ध 'खांटी स्वदेशी' शिल्प को बचाने की पहल नहीं की. खान और खनिज पर उनके मालिकाना हक को नजरंदाज किया गया. क्या ऐसा सिर्फ इसलिए हुआ कि यह यहां की आदिम जनता का ज्ञान और उसकी संपत्ति थी? जिससे उनका पुराना सांस्कृतिक टकराव था और उनकी सामाजिक प्रणाली में वे सबसे निचले पदानुक्रम के लोग थे? जातीय वर्चस्व और सांस्कृतिक श्रेष्ठता के दंभ से इनकार नहीं किया जा सकता है. इस दौरान आदिवासियों पर जिस तरह के औपनिवेशिक कानून लादे गए, उससे उनके अस्तित्व पर ही संकट खड़ा हो गया. अब आदिवासी दुनिया में बदहाली का नया दौर शुरू हो रहा था. अगरिया या असुर आदिवासी लोहे का उत्पादन करते थे लेकिन उनका संबंध जंगलों से था. वे लोहे के भट्ठों के लिए जंगल से चारकोल तैयार करते थे और संवेदनशीलता से उसे संरक्षित करते थे. एक तरफ इस्पात की नई नीतियों ने उन्हें हाशिए में डाला तो दूसरी तरफ वन कानूनों ने उनके जंगलों पर निषेध लगाया. अब जो समुदाय स्वतंत्र होकर जंगलों में जाते थे, वे अपने ही जंगलों में चोर की तरह महसूस करने लगे थे. आदिवासी समुदाय चौतरफा मार के शिकार हुए. परिणामतः ये आर्थिक रूप से कंगाल तो हुए ही, उनकी अस्मिता, जो पूरी तरह पारिस्थितिकी से जुड़ी थी, उसपर नियंत्रण ने उनके सांस्कृतिक आत्मविश्वास को भी तोड़ दिया. इस दौर में इसी के समानांतर आदिवासी अंचलों में तथाकथित समाज सुधारकों और धर्म प्रचारकों की भीड़ बढ़ती गयी. आदिवासी अपनी मूल छवि खोते गए.

अब संसद ने खान और खनिज(विकास और विनिमय) संशोधन अधिनियम 2026 लागू किया है. यह 1957 के अधिनियम का ही संशोधित रूप है. 1957 के अधिनियम में थोड़ी सी राहत यह थी कि इसमें राज्यों को खनिज अधिकारों और खनिज युक्त भूमि पर कर लगाने की छूट थी. लेकिन क्या इस अधिनियम ने भी आदिवासी समुदायों के हितों की रक्षा की थी, जबकि आदिवासी जमीन पर ही खान और खनिज हैं? उत्तर होगा—नहीं. अगर आदिवासी हितों की चिंता होती तो उसी समय सहकारी समितियों या सहकारी उपक्रमों के द्वारा खान और खनिज उद्योग में आदिवासियों की भागीदारी सुनिश्चित की गई होती, ना कि उन्हें नौकरी और रॉयल्टी के जुमले में फंसाया जाता. अभी संशोधित अधिनियम ने तो अब दो कदम आगे बढ़ते हुए राज्यों से खान और खनिज संबंधी अधिकारों को खनिज सुधार और निवेश के नाम पर छीन लिया है. इससे भारतीय गणतंत्र के संघवाद को लेकर चिंताएं उभरी तो हैं ही,

इसने राज्यों के संसधानों पर नियंत्रण के अधिकार को छीनकर निरंकुशता स्थापित कर दी है. इसका सीधा असर आदिवासी बहुल राज्यों पर होगा, जिससे आदिवासी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते. भारतीय संविधान के संघवाद की प्रणाली के तहत प्रदत्त राज्यों की शक्ति को जब पूंजीपतियों की सुविधा के लिए छीना जा सकता है तब क्या पेसा अधिनियम 1996 में नाममात्र उल्लेखित आदिवासी हितों को बचाया जा सकता है?

बीसवीं सदी के आरंभ में जिन दिनों इस्पात उद्योग के लिए नियम बन रहे थे, उन दिनों भी आदिवासियों को नीतियों में साझीदार न बनाकर उनके संसाधनों से बेदखल किया गया था और आज इक्कीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में भी आदिवासी समुदाय के साथ वही छल हो रहा है. सारांश यह है कि इन सौ वर्षों की यात्रा में आदिवासियों को लेकर न राष्ट्रवादियों की चिंता रही है न ही आधुनिक लोकतंत्रवादियों को. इन तत्वों ने आदिवासियों की स्वायत्तता को कभी खुलेमन से स्वीकार नहीं किया, इन्होंने हमेशा आदिवासियों को अपने नियंत्रण और निर्देशन में रखने का केवल कानूनी अभ्यास किया है. संसाधनों पर आदिवासियों के मालिकाना हक या उनकी भागीदारी का कोई रास्ता संसद भी निकालना नहीं चाहती है. संसाधनों पर प्रत्यक्ष भागीदारी के बजाय उन्हें 'रॉयल्टी' जैसे जुमलों में फंसा दिया जाता है. रॉयल्टी तो उन्हें कभी कायदे की मिली नहीं लेकिन थोक भाव में पलायन और विस्थापन आदिवासियों को झेलना पड़ा है. यदि आदिवासी समुदाय इन नीतियों का विरोध कर दे तो वह देशद्रोही या नक्सल कह दिया जाता है.

●

आदिवासी प्रश्न पर विचार करते हुए बार-बार ऐतिहासिक संदर्भों का उल्लेख करना पड़ता है. आदिवासी समाज, उसकी अस्मिता और उसके मनोविज्ञान को समझे बिना उनसे जुड़े प्रश्नों को हल नहीं किया जा सकता है. 'हंस' पत्रिका ने आदिवासी प्रश्नों पर विचार करने का भरपूर अवसर उपलब्ध कराया. इसके लिए 'हंस' और उसके पूरे परिवार का शुक्रिया! इन दो अंकों में आदिवासी समाज की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति को 'आदिवासी नजरिए' से प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है. राजेन्द्र यादव ने भारतीय समाज और साहित्य के मंच पर नई दृष्टियों और शैलियों को प्रकाशित करने का अभूतपूर्व कार्य किया है. अगर उनकी उपस्थिति में ये अंक प्रकाशित होते तो संभवतः हमें नया नजरिया मिलता. उनकी कमी को मैंने निजी तौर पर महसूस किया है.

आदिवासी अस्मिता या विमर्श की जो बात सदियों से उठी है वह आदिवासियत के लिए है. आदिवासियत सिर्फ जीवन शैली नहीं है बल्कि यह दर्शन है, विचारधारा है, जो आदिवासी नजरिए से, न सिर्फ भारतीय समाज का, न सिर्फ विश्व समाज का बल्कि पूरी मानव सभ्यता का मूल्यांकन करता है. आदिवासियत मनुष्य और मनुष्य में, प्रकृति और मनुष्य में बेहतर रिश्ते की आवाज है. यह किसी भी तरह की श्रेष्ठता, कुलीनता या असमानता का निषेध करता है. यह श्रेष्ठता, कुलीनता या असमानता केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है बल्कि सभी जीवों तक फैला हुआ है. आदिवासी पुरखों ने कहा था कि इस प्रकृति में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ जीव नहीं है बल्कि वह इस प्रकृति का तंतु मात्र है. सबका अस्तित्व एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है. इन्हीं अर्थों में यह फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के विचार से बृहद नजरिया रखता है. फ्रांसीसी क्रांति के स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का विचार केवल इंसानों तक सीमित था. इंसानी श्रेष्ठता के विचार ने प्रकृति के दोहन की असीम सत्ता हासिल की है, जिसने भविष्य के विकल्पों को कुचला है.

यह दुहराने की जरूरत नहीं है कि आदिवासियत का प्रसार ही आदिवासी समस्याओं का हल निकाल सकता है. सभी प्रगतिशील तत्व इसके सहचर हो सकते हैं. हमें आदिवासियत की जरूरत है न कि आदिवासीवाद की. आदिवासियत और आदिवासीवाद दो अलग चीजें हैं. आदिवासीवाद आदिवासियों का द्वीप बनाता है, जबकि आदिवासियत आदिवासी पुरखों की ज्ञान परंपरा और उसकी विश्व-दृष्टि से दुनिया को आलोकित करता है. दुनिया को आदिवासियत के लिए कृतज्ञ होना चाहिए. यह मानव समाज की बहुलतावादी संस्कृति की नींव है. आदिवासियत दुनिया में पसरती सत्ता की निरंकुशता के विरुद्ध स्वायत्तता की मुखर मांग है. आदिवासी साहित्य इसका सबसे पुराना निवास स्थल है.

हम 'हंस' के आदिवासी विशेषांक के लिए अमूल्य योगदान देने वाले लेखकों, अनुवादकों के प्रति आभारी हैं. उन्होंने मिशनरी भाव से हमारी मदद की है. हम उन लेखकों से खेद प्रकट करते हैं जिनकी रचनाओं को हम शामिल नहीं कर पाए. निस्संदेह इन दो अंकों की योजना बड़ी योजना है लेकिन आदिवासी अभिव्यक्ति के लिए ये दो अंक भी कम हैं. हम अगली यात्राओं के लिए आपके साथी बने रहने की उम्मीद बनाए रखेंगे.

●

पिछले अंक(अगस्त-2026) से एक भूल सुधार है संपादकीय में मेनस राम ओड़ेया के संदर्भ में. मुंडारी भाषा के साहित्य लेखन का उल्लेख करते हुए त्रुटिवश '19वीं सदी का पूर्वार्द्ध' लिखा गया है. उसे '20वीं सदी का पूर्वार्द्ध' पढ़ा जाए.

हूल जोहार!

ईमेल : martialartanuj@gmail.com